ISSN : 3048-6203 Volume -3| Issue -1| Jan - June 2026

शोध भूमि
शिक्षा एवं शिक्षण शास्त्र विषय की पूर्व समीक्षित शोध पत्रिका
Page No. : 7-12

रामचरित मानस में लोकतत्त्व

डॉ. विजय लक्ष्मी
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
एकलव्य विश्वविद्यालय दमोह, मध्य प्रदेश, भारत
Email- vijyalaxmi7084@gmail.com

सारांश

भक्ति आंदोलन हिंदी साहित्य के इतिहास का अत्यंत गौरवपूर्ण कालखंड है। भक्ति काल की लोकधर्मिता के फलस्वरूप ही यह भावनात्मक एकता कायम हो सकी थी, जिसका आधार था भक्त कवियों का सर्वत्र लोक जीवन और लोक भाषाओं से गहरा संबंध है। भक्ति साहित्य सामंत विरोधी लोक जागरण का साहित्य है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र में रामचरित मानस में लोक तत्व की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्धारण किया गया है। शोध पत्र में प्रस्तावना, शब्द कुंजी व लोक तत्व की व्युत्पत्ति एवं विभिन्न विद्वानों के मतों को दिया है साथ ही लोक समाज, लोकसंस्कृति, लोक जीवन को भी विश्लेषित किया है। साहित्य से लोकतत्त्व का संबंध एवं हिंदी में लोक तत्व की भूमिका का निर्धारण करते हुए रामचरित मानस में लोक तत्त्व को बताया गया है।

शब्द कुंजी – लोकतत्व, लोक समाज, मर्यादा पुरुषोत्तम, साधनावस्था, लोक संस्कृति, लोक जीवन, जातीय, समुदाय, धर्मपरायणता, वनगमन।

प्रस्तावना – भक्तिकाल की रामभक्ति शाखा के कवि तुलसीदास को हिंदी का जातीय कवि कहा जाता है। तुलसीदास जी भक्ति काव्य धारा की सगुण शाखा के प्रतिनिधि भक्त कवि थे। उन्होंने वाल्मीकि और भवभूति के राम को पुनः प्रतिष्ठित ही नहीं किया बल्कि उन्होंने मानस में जिस राम को निर्मित किया, वे ब्रह्म होते हुए भी ऐतिहासिक स्थितियों के आधार व्यक्ति हैं। ये अपार मानवीय करुणा वाले हैं। तुलसी के राम तुलसी के व्यक्तिगत संघर्ष और उनके युग की विषमता के आलोक में प्रकाशित हैं। तुलसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील शक्ति और सौंदर्य से संवलित अद्‌भुत रूप का गुणगान करते हुए लोक मंगल की साधनावस्था का पथ प्रशस्त किया। उनके काव्य की सफलता उनकी अपूर्ण समन्वय शक्ति में है। मानस में जहाँ लोक विधियों के सूक्ष्म अध्ययन का प्रमाण मिलता है। वही शास्त्र के गंभीर अध्ययन का भी परिचय मिलता है। लोक

प्रचलित काव्य रूपों के साथ जीवन के बड़े लक्ष्य और आदर्श का योग हो जाने के कारण तुलसी साहित्य में अपूर्व तेजस्विता आ गयी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तुलसीदास जी के विषय में उचित ही लिखा है – ''भारत वर्ष का लोक नायक वही हो सकता है, जो समन्वय का अपार धैर्य लेकर आया हो....उनकी काव्य पद्धति का अध्ययन करने से उसकी अद्‌भुत समन्वयात्मिकता बुद्धि का परिचय मिलता है।'**1**

लोक तत्व – लोक शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु से बना है। इसमे मन घञ प्रत्यय लगने से 'लोक' शब्द निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ है– देखना! इसका लट् लकार अन्य पुरुष एक वचन में लोकते रूप है। अतः लोक शब्द का मूल अर्थ हुआ – देखने वाला। वह समस्त जन समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलायेगा।

''लोक शब्द की व्युत्पत्ति परक मतों में भिन्नता है। ऋग्वेद में लोक शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दो अर्थों में किया गया है। यहाँ लोक (समाज) को पुरुष रूप ईश्वर माना गया है।'**2**

आर्यों के आगमन पर आर्य तथा आर्य इतर जातियों के सांस्कृतिक संघर्ष के फल स्वरूप वेद तथा वैदेतर संस्कृति का जन्म हुआ जिससे एक नवीन अर्थ की उद्‌भावना के साथ लोक शब्द अर्थववेद विरोधी हो गया इससे वेद की प्रतिष्ठा के साथ–साथ लोक का स्वतंत्र महत्व भी हो गया किन्तु ''आज लोक शब्द संकुचित अर्थ से ऊपर उठ गया है। वह परम्परा का सहेजक तथा संवेदनात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति का सतत संवाहक बन गया है। वस्तुतः संस्कृति 'लोक' से भिन्न नहीं है। उसका उत्स लोक ही है लोक का महत्व सर्वकालीन है।'**3** लोक शब्द पर विचार करते हुए डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है कि ''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है। लोक का गान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार है और निर्वाण का नवीन रूप है। लोक पृथ्वी–मानव इस त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।'**4**

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि ''लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों व गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं है। ये लोक नगर में परिस्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृतिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत जांच वाले लोगों की सुमूची विलासिता सुकुमारिता के जीवित रखने के लिए आवश्यक वस्तुएं उत्पन्न करते है।'' उन्होंने लोक शब्द की परिभाषाए इस प्रकार की है – ''आधुनिक सभ्यता से दूर अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को लोक कहते हैं। जिनका आचार, विचार और जीवन परम्परायुक्त नियमों से नियंत्रित होता है।'**5**

डॉ रवीन्द्र भम्रर ने लोक शब्द की सीमा रेखा निर्धारित करते हुए लिखा है – ''साहित्य अथवा संस्कृति के विशिष्ट भेद की ओर इंगित करने वाले एक आधुनिक विशेषण के रूप में 'लोक' शब्द का अर्थ ग्राम या जनपदीय समझा जाता है। किन्तु इस दृष्टि से केवल गाँवों में ही

नही, वरन् नगरों, जंगलों, पहाड़ों और टापुओं में बसा हुआ वह मानव समाज जो अपने परंपरा प्रथित रीति रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने के कारण अशिक्षित एवं अल्प सभ्य कहा जाता है, लोक का प्रतिनिधित्व करता है।'**6**

श्रीमती शार्लट सोफिया वर्न के अनुसार – ''यह एक जाति बोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है। जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास रीतिरिवाज, कहानियां गीत तथा कहावतें आती हैं।'**7**

लोक समाज – लोक समाज अपनत्व की भावना से परिपूर्ण एक ऐसा समाज जहाँ सभी प्रकार के सुख–दुख, राग द्वेष हर्ष उल्लास आदि जैसी भावनाओं को प्रदर्शित करने के लिए किसी भी प्रकार के संकोच – हिचक आदि का सहारा नही लिया जाता है। लोक समाज की कुछ विशेषताएं होती है जैसे – आकार की लघुता, एकांतिकता, आत्मनिर्भरता, जातीय आचार विचारों में समानता, वैक्तिक संबंधों की निकटता सरल तकनीकी विधान, परिवार की महत्ता नियमों का पारस्परिक होना, धर्मपरायणता, लोगों की इच्छा आकांक्षाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति, जीवन प्रणाली की एकसूत्रता और रीति–रिवाजों से बद्ध मानव – स्वभाव आदि। अतः लोकसमाज मानव–समूह का वह भाग है जिसमें आत्मिक लगाव की निकटता तीव्र होती है।

लोक संस्कृति – लोक संस्कृति वस्तुतः आदिम परम्परा से आबद्ध लोकमन की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे धर्म अध्यात्म और दर्शन का क्षेत्र हो चाहे विज्ञान तथा अभिचार के क्षेत्र हो या कला, साहित्य और शिल्प के क्षेत्र हो, लोक संस्कृति के विविध आयामों का बोध कराते हैं।

लोक जीवन – लोकजीवन व लोक संस्कृति एक दूसरे से भिन्न नहीं है, ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। प्रत्येक देश में अनेक सांस्कृतिक, जातीय और आर्थिक समुदाय होते हैं जो अपनी सांस्कृतिक और जातीय परम्पराओं से बद्ध और अपनी बाहय परिस्थितियों से अनुप्रेरित होकर अपना जीवन यापन करते हैं।

साहित्य एवं लोकतत्व – लोक वार्ता और साहित्य का संबंध अन्योन्याश्रित है। साहित्य के विविध रूप जातीय विशिष्टताओं के परिणाम होते हैं। ''साहित्य की ही भाँति लोकतत्व की भी व्यापकता है। साहित्य में व्याप्त लोक तत्व ही उस साहित्य का मूल है। लोकतत्व की यह व्याप्ति अन्तरंगिणी है, सूक्ष्म है। वह साहित्य में विद्यमान होते हुए भी प्रायः अप्रतीत ही बनी रहती है। साहित्य अपने आर्विभाव के आदिकाल में लोक तत्व के अत्यंत सान्निध्य में रहा था या वैज्ञानिक दृष्टि से कहें तो उसमें तादात्म्य किए हुए था... साहित्य एवं लोकतत्व अविभाज्य तत्व हैं और साहित्य में लोक तत्व की परिव्याप्ति भी शाश्वत एवं चिर् स्थायी सत्य है।'**8**

हिंदी साहित्य में लोक तत्व – हिंदी साहित्य की शास्त्रीय परंपरा में भी लोकतत्व के दर्शन होते हैं। आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्य में लोकतत्व विद्यमान है। आदिकालीन साहित्य वीराख्यानों, कथा गीतों रास तथा रास से संबंधित काव्य रूपों, उपदेशक काव्यों – जैन, सिद्ध, नाथ, संतों की वाणियों मुकरियों तथा दोहों के रूप में उपलब्ध हैं। रास तथा नाम की अनेक रचनाएँ, जैन कवियों की रचनाएँ व्यक्तिकृत हैं। उनका सामूहिक गायन तथा नृत्य, उनके छंद निरुपण की शैली लोककाव्य की विशेषताओ के अनुरूप हैं।

भक्ति काल के काव्य में लोक परम्परा की प्रधानता है। कबीर के लोक प्रचलित गीतों में रहस्यवाद का पुट है। 'सूरसागर' में ब्रजप्रदेश की लोक प्रचलित गीतों में रहस्यवाद का पुट है। 'सूरसागर' में ब्रजप्रदेश की लोक प्रचलित वार्ताओं का स्थान–स्थान पर उल्लेख है। गोवर्धन पूजा गोपियों का फाग खेलना, रामलीला, पनघट, दीपोत्सव. बसंतोत्सव आदि का वर्णन मिलता है।

तुलसीदास ने लोकवार्ता के विभिन्न तत्वों–लोक प्रचलित विश्वासों, कथाभिप्रायों, लोक सांस्कृतिक उपादानों का लोक व्यवहार में प्रचलित शास्त्रीय तत्वों के साथ समन्वय स्थापित किया है। कवि का यह समन्वय लोक समाज के धरातल पर ही मानना चाहिए, शास्त्रीय धरातल पर नही रामचरित मानस लोकमंगल काव्य है। सोहर तथा मंगल काव्य उस समय के लोक काव्य के प्रसिद्ध रूप थे। लोकसाहित्य की दृष्टि से इस महाकाव्य का बहुत महत्व है।

रामचरित मानस में लोकतत्व – भारतीय संस्कृति का चित्रण जितना मानस में किया गया है शायद ही किसी और ग्रंथ में किया गया है, क्योंकि इसमें श्री राम जी के माध्यम से, लक्ष्मण जी के माध्यम से और अन्य चरित्रों के माध्यम से हर चीज की चरम सीमा बताई गई है।

हमारे हिंदू धर्म में माता को देवताओं से भी सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। माता और पिता पृथ्वी और आकाश के समतुल्य माने जाते हैं और मानस में श्री राम के माध्यम से माता और पिता की आज्ञा को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। उन्होंने वनगमन को जिस प्रकार शिरोधार्य किया वह उस युग में आदरणीय था। मानस में लगभग सभी पात्र अपने माता–पिता एवं गुरुजनों का कहना बहुत ही शालीनता के साथ मानते हैं। यही हिंदू धर्म की संस्कृति है राम कर्तव्य परायण है अपनी माता से इस प्रकार कहते हैं –

''आयसु देहि मुदित मन माता। जेहि मुद मंगल कानन जाता।
जनि सनेह बस डरपति भोरें। आनँदु अंब अनुग्रह तोरे।''**9**

तुलसी का युग राजसत्ता की दृष्टि से बड़ा विपन्न युग था। इसका प्रभाव परिवार और समाज के जीवन पर बहुत बुरा पड़ रहा था। राम चरित मानस में इसकी ओर संकेत हैं। राजनीति की सतायी हुई जनता को उस समय धर्म द्वारा भी कोई बल अश्वासन नहीं मिल पा रहा था। तुलसी स्पष्ट लिखते हैं –

''कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त'**10 भए सदग्रंथ।**

तुलसीदास जी ने नारी जीवन के विविध चित्र खींचे हैं मध्य काल में शायद ही किसी कवि ने नारी की पराधीनता का इतना स्पष्ट उल्लेख किया है –

''कतविधि सृजी नारि जग माँही।
पराधीन सपनेंहुँ सुख नाहीं।।'**11**

गोस्वामी तुलसी अवतार द्वारा, अर्थात अवतार पुरुष राम के नाम–रूप–गुण और लीला द्वारा लोक चेतना को उत्कर्ष के उस स्तर पर पहुँचाना चाहा है रामचरित मानस के पाठ और मनन से ही चेतना में यह उत्कर्ष पैदा हो सकता है, क्योंकि तुलसी का कहना है कि –

''यह गुन साधन तें नहि होई
तुम्हारी कृपा पाव कोई–कोई।'**12**

श्री रामचरित मानस एक ऐसा महाकाव्य है जो प्रत्येक भारतीय के हृदय में बसा है। इसके नियम, मूल्य, मान्यताएँ, रीतिरिवाज हमारी रक्त धारा के साथ मिलकर हमारे शरीर में अनवरत चलाएमान है और जो रक्त धारा है, वह जीवन दायिनी शक्ति है, आधार है वह तो बहुमूल्य होगी ही। श्री राम चरित मानस के बिना भारत की पहचान संभव नहीं हो सकती। यह सर्व साधारण भारतीय का अपना महाकाव्य है क्योंकि –

''सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुण गान,
सादर सुनहिं ते तरही भव, सिंधु बिना जल जान।'**13**

तुलसीदास लोकतत्व को अधिक महत्व देते है उन्होंने संयुक्त परिवार के आदर्शों को केवल सिद्धांतों में नहीं पात्रों के व्यवहारों में भी दर्शाया है। भाई–भाई का संबंध, पति–पत्नी का संबंध, हर जगह तुलसी पारिवारिक आदर्श का परिचय देते हैं। उनके पारिवारिक आदर्श में व्यक्तिगत स्वार्थ का कोई स्थान नहीं है। हर सदस्य त्याग की प्रतिमूर्ति है राज्याभिषेक की बात आई तो राम चिन्तित हुए –

''जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई।
करन वेध उपबीत बिआहा। संग–संग सब भए उछाहा।**14**
विमल बंस यदु अनुचित एकू। बन्धु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।**15**

दशरथ के परिवार में न सिर्फ राम, बल्कि एक–एक सदस्य त्याग और आदर्श की प्रतिमूर्ति है। दशरथ जी की मृत्यु के उपरांत भरत जब अयोध्या पहुंचते हैं और उन्हें राम वनगमन और पिता की मृत्यु का कारण पता चलता है तब इस पारिवारिक संकट का मूल वे स्वयं को मानते हैं –

''भरतहि विसरोउ पितुमरन सुनत राम वन गौनु,
हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौन।**16**

वैदिक युग में ही भारतीय चिंतको तथा व्यवस्थापकों ने व्यक्ति के जन्म से मरण तक कई संस्कार – कर्मो का विधान किया जिनसे न केवल जीव की अंतः चेतना के विकास में सहायता मिलती है अपितु इनका प्रभाव सामूहिक जीवन पर भी पड़ता है। परिवार, गोत्र और समुदाय ऐसे अवसरों पर एकत्र ही पारस्परिकता की वृद्धि करते हैं। मानस में राम तथा अन्य राजकुमारों के जन्मोत्सव, चूडाकर्म, नामकरण, यज्ञोपवीत आदि संस्कारों का तुलसी ने बड़े मनोयोग से वर्णन किया है। इसी प्रकार शिव पार्वती तथा राम सीता के विवाहोत्सव का वर्णन भी बड़े उल्लास के साथ किया है।

भोजन के समय नारियों द्वारा दी जाने वाली मांगलिक गाली गीतों और उन पर बरातियों की मुग्धता का सुंदर वर्णन किया गया है –

''जेवंत देहि मधुर धुनी गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी।
समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा।'**17**

तुलसीदास व्यक्तिवाद के विरोधी और लोकवाद के समर्थक से लगते हैं, पर उनके लोकवाद की भी मर्यादा है। वे व्यक्ति की स्वतंत्रता का हरण नही चाहते वे व्यक्ति के आचरण पर इतना ही प्रतिबंध चाहते हैं जितने से दूसरों के जीवन मार्ग में बाधा न पड़े और हृदय की उदात्त वृत्तियों के साथ लौकिक संबंधों का सामंजस्य बना रहे।'**18**

वे मानव और मानवता की महत्ता में विश्वास रखते हैं और इसलिए लिखते हैं–

''मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा
राम ते अधिक राम कर दासा।**19**

संदर्भ सूची –

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी– हिंदी साहित्य उद्‌भव और विकास पृ. 13
2. सहस्रपाद : सहस्रशीर्ष पुरुष, सहस्राक्ष – 10/90 यजु
3. श्याम परमार – भारतीय लोकसाहित्य – पृ. 10
4. सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति विशेषांक सं. 2010 पृ. 65
5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का लेख – जनपद अम्टूबर 1952 पृ. 65
6. रवीन्द्र भ्रमर – हिंदीभक्ति साहित्य में लोक तत्व – पृ. 3
7. सोफिया वर्न – द हैण्डबुक ऑफ फोका लोर
8. डॉ इंदिरा जोशी – हिंदी उपन्यासों में लोक तत्व
9. तुलसीदास – रामचरितमानस – 2/52/4
10. तुलसीदास – रामचरितमानस – 2/7/97
11. तुलसीदास – रामचरितमानस – 1/101/3
12. तुलसीदास – रामचरितमानस – 4/12/4
13. तुलसीदास – रामचरितमानस – 5/60
14. तुलसीदास – रामचरितमानस – 14/9/3
15. तुलसीदास – रामचरितमानस – 2/9/4
16. तुलसीदास – रामचरितमानस – 2/160
17. तुलसीदास – रामचरितमानस – 1/328/3
18. तुलसीदास – रामचरितमानस – 1/328/4
19. तुलसीदास – रामचरितमानस – 7/119 (ख)/8